पाठ्यपुस्तकों की नई संस्कृति

❑ विश्वंभर

किसी भी प्रकार के शैक्षिक विमर्श, प्रक्रियाओं, शिक्षण सामग्री एवं दस्तावेजों में व्यक्त-अव्यक्त रूप में शिक्षा के उद्देश्य निहित होते हैं। शिक्षा के उद्देश्य शिक्षा के समाजशास्त्र को समेटे होते हैं कि, हम शिक्षा के माध्यम से किस प्रकार के समाज की कल्पना करते हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था पर अनेक गंभीर आरोप लगते रहे हैं। शिक्षा को अनुकूलन एवं यथास्थिति का पोषण करने वाली व्यवस्था, सामाजिक-राजनैतिक परिवेश से प्राप्त मूल्यों का पोषण करने वाली व्यवस्था, माना जाता रहा है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था से सामाजिक परिवर्तन, परिवर्तनकामी शक्तियों का साथ देने, की उम्मीद भी नहीं की जा सकती। लेकिन यदि शिक्षा को आलोचनात्मक विवेक के विकास एवं सामाजिक परिवर्तन का जरिया माना जाए तो सर्वप्रथम शिक्षा ज्ञान अर्जित करने के तरीकों से परिचित कराने, पूर्व अर्जित ज्ञान पर पुनर्चिंतन करने एवं शिक्षार्थी को अपने परिवेश को समझने की दृष्टि प्रदान करने का काम करेगी और यह दृष्टि समस्त प्रक्रियाओं, शिक्षण सामग्री एवं दस्तावेजों में भी परिलक्षित होगी। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) द्वारा विकसित पाठ्यपुस्तकों को इसी नजरिए से देखने की आवश्यकता है। पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में और कई महत्त्वपूर्ण समस्याएं हैं जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता। एक, ज्ञान की अवधारणा एवं स्वरूप को कैसे देखा जाए और दूसरे कि, बच्चे को कैसे समझा जाए ? आमतौर पर पाठ्यपुस्तकों को ज्ञान के भण्डार के रूप में देखा जाता है जिसे वे प्रमाणित, अरिवर्तनीय, शाश्वत, पूर्व ज्ञात एवं विखंडित (विषय क्षेत्रों में बंटा - एक दूसरे से अलग-थलग) रूप में संप्रेषित करती हैं। ऐसी स्थिति में पाठ्यपुस्तकों में बच्चों के अनुभव एवं पूर्व ज्ञान को कोई स्थान नहीं मिलता और इसका असर होता है कि बच्चे इन्हें न सिर्फ पढ़ते-पढ़ते ऊबते हैं बल्कि उनको देखना भी उन्हें उबाता है। बच्चे को भी निष्क्रिय ग्रहणकर्ता के तौर पर देखा जाता है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा वर्ष 2005 में निर्मित पाठ्यपुस्तकें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 के निर्देशन में बनी हैं। एकबारगी यह देख लेना उचित होगा कि यह पाठ्यचर्या की रूपरेखा शिक्षा के उद्देश्यों, ज्ञान के स्वरूप एवं शिक्षार्थी को कैसे देखती है और अंत में यह देखेंगे कि पाठ्यचर्या के निर्देशन में बनी पाठ्यपुस्तकें किस हद तक इनका पालन करती हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों को चिन्हित करने में संवैधानिक मूल्यों को आधार बनाती है और संवैधानिक मूल्यों - 'सामाजिक न्याय और समानता पर आधारित एक धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक और बहुलावादी समाज' के आदर्श से प्रेरणा लेती है। शिक्षा के उद्देश्यों के संदर्भ में कहा गया है कि शिक्षा के माध्यम से बच्चों में 'विचार और कर्म की स्वतंत्रता, दूसरों की भलाई और भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता, नई स्थितियों का लचीलेपन और रचनात्मक तरीके से सामना करना, लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी की प्रवृत्ति और आर्थिक क्रियाओं और सामाजिक बदलाव में योगदान देने के लिए काम करने की क्षमता' का विकास करना है। इन्हें अर्जित करने के लिए दस्तावेज में कुछ दिशा निर्देश भी तय किए हैं - ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना, पढ़ाई को रटन्त प्रणाली से मुक्त करना, शिक्षा को पाठ्यपुस्तक केन्द्रित करने के बजाए चहुंमुखी विकास के अवसर के रूप में देखना आदि। यह दस्तावेज शिक्षार्थी को स्वभाविक सीखने वाले के रूप में स्थापित करते हुए बच्चे को अपने अनुभव से

सीखते हुए सक्रिय ज्ञान सर्जक के रूप में देखता है अर्थात् सीखने की प्रकिया में व्यस्त बच्चा अपने ज्ञान का सृजन खुद करता है। ज्ञान को सूचनाओं और जानकारियों के हस्तांतरण के रूप में देखने का विरोध किया गया है। दस्तावेज में सलाह दी गई है कि 'स्कूलों द्वारा ऐसे असवर प्रदान किए जाने चाहिएं ताकि बच्चे प्रश्न पूछकर और चर्चा एवं चिंतन कर अवधारणाओं को आत्मसात करें या नए विचार रचें'। निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि इस दस्तावेज में हमारी शिक्षा व्यवस्था में बैठी उन रूढ़ छवियों को चुनौती दी गई है जहां कि बच्चे को निष्क्रिय ग्रहणकर्ता के तौर समझा जाता रहा है और ज्ञान को पाठ्यपुस्तक केन्द्रित एवं सूचनापरक मानते हुए बच्चे के अनुभव की अवहेलना की जाती रही है।

हम शुरूआत करते हैं सामाजिक विज्ञान से। सामाजिक विज्ञान की तीसरी, छठी, नवीं और ग्यारहवीं की पाठ्यपुस्तकें अभी तक बनी हैं। क्या कहती हैं ये पुस्तकें ? इन पाठ्यपुस्तकों के कुछ अध्यायों से बानगी देखते हैं। सर्वप्रथम, कक्षा 6 की पुस्तक 'सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन-1' को देखते हैं। इस पुस्तक में कुल चार ईकाई हैं। पहली है - विविधता। अध्याय-1 'विविधता की समझ' में बताया गया है कि 'हमारे देश में तमाम धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के चलते खान-पान, रहन-सहन, तीज-त्यौहार आदि में विविधता है'। लेकिन कोई यह न समझ बैठे की हमारे समाज में गरीबी व गैर बराबरी के लिए भी यह तर्क इस्तेमाल किया जा सकता है। अत: कहा गया है कि, ''गैर बराबरी का मतलब है कि कुछ लोगों के पास न अवसर हैं और न ही जमीन या पैसे जैसे संसाधन जो दूसरों के पास हैं। इसलिए गरीबी और अमीरी विविधता का रूप नहीं हैं। यह लोगों के बीच असमानता या गैर बराबरी है।'' साथ ही इस अध्याय में पूर्वाग्रह तथा भेदभाव के विविध रूपों जैसे लिंग, जाति, शारीरिक विकलांगता आदि का भी गहन विमर्श प्रस्तुत किया गया है। एक सवाल देखिए जो इस अध्याय में दिया गया है - ''दलित के अलावा कई अन्य समुदाय हैं जिनके साथ भेदभाव किया जाता है। क्या आप भेदभाव के कुछ अन्य उदाहरण सोच सकते हैं ?''

कक्षा 9 के लिए राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तक 'लोकतांत्रिक राजनीति' से कुछ उदाहरण देखते हैं। अध्याय-1 'समकालीन विश्व में लोकतंत्र' की शुरूआत में 'लोकतंत्र के दो किस्से' हैं और अध्याय की शुरूआत में है - ''मेरे मुल्क के मेहनतकश मजदूरो ! चिले और इसका भविष्य बहुत ही अच्छा है, इस बात का मुझे पूरा भरोसा है। जब देशद्रोह करने वाली ताकतें अपनी सत्ता पूरी तरह कायम कर लेंगी तब भी देर-सबेर वे स्थितियां बनेंगी ही जिसमें आजाद लोग एक बेहतर समाज की रचना के लिए आगे बढ़ेंगे। चिले जिन्दाबाद ! चिलेवासी जिन्दाबाद ! मजदूर जिंदाबाद ! '' यह अमेरिकी महाद्वीप के प्रमुख देश, चिले, के राष्ट्रपति सल्वाडोर आयेंदे का आखिरी भाषण है - आशा एवं विश्वास से भरा हुआ। इसके बाद फौज ने उनकी सरकार का तख्तापलट कर दिया और उनकी हत्या कर दी थी। इस अध्याय में बताया गया है कि दुनिया के देशों में लोकतंत्र की प्राप्ति आसान नहीं रही है और विभिन्न देशों ने इसके लिए बहुत उतार-चढ़ाव देखे हैं। पूरी पुस्तक में दो चरित्र गढे गए हैं 'उन्नी' और 'मुन्नी'। ये दोनों ही चरित्र बहुत दुस्साहसी हैं। कभी भी प्रकट होकर ऐसे सवाल पूछते हैं कि आपका माथा ठनक जाए। एक सवाल देखिए - ''राष्ट्रपति आयेंदे बार-बार मजदूरों की बात क्यों करते हैं ? अमीर लोग उनसे नाखुश क्यों थे ?'' अगला सवाल है, ''क्या सेना को यह अधिकार है कि वह देश के रक्षा मंत्री को गिरफ्तार करे ? क्या सेना को देश के किसी नागरिक को गिरफ्तार करने का अधिकार है ?'' 'विश्व स्तर पर लोकतंत्र' में बच्चों की बातचीत का एक हिस्सा देखिए -

''फरीदा : हमने जाना है कि लोकतंत्र का विस्तार अधिक से अधिक इलाकों में और दुनिया भर के देशों में हो रहा है।

राजेश : हां, हम आज पहले से बेहतर दुनिया में रह रहे हैं। ऐसा लगता है कि हम विश्व लोकतंत्र की तरफ बढ़ रहे हैं।

सुष्मिता : विश्व-लोकतंत्र ! क्या बात कर रहे हो ? मैंने टीवी में देखा कि बिना किसी उचित कारण के अमेरिका ने इराक पर हमला कर दिया। इराक के लोगों की राय कभी भी नहीं जानी गई। तुम इसे किस तरह विश्व लोकतंत्र कह सकते हो ?

.....

राजेश : लेकिन दोनों में अंतर क्या है ? अगर ज्यादा से ज्यादा देश लोकतंत्र को अपना रहे हैं तो क्या इसका अर्थ नहीं है कि दुनिया ज्यादा लोकतांत्रिक हो रही है ? आखिर इराक युद्ध भी तो उस देश में लोकतंत्र कायम करने के लिए ही हुआ।

सुष्मिता : नहीं, मुझे तो बिल्कुल ऐसा नहीं लगता।....''

ये बातचीत है बच्चों की। निश्चित ही ये कल्पित है। लेकिन बच्चों के सम्मुख यह एक अहम मुद्दा है जिस पर कि विचार विमर्श होना चाहिए। एक ऐसा मुद्दा जिसने इस दुनिया को बहुत समय तक हिलाए रखा। आगे पृष्ठ 16 पर संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं जिन्हें आमतौर पर लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की पेरोकार संस्थाओं के तौर पर पढ़ाया जाता है, के बारे में उनके गठन एवं कार्यों संबंधी जानकारी के बाद लिखा है ''लेकिन हमें यह जानने की जरूरत भी है कि ये संस्थाएं खुद कितनी लोकतांत्रिक हैं और इस बात को जांचने का सबसे अच्छा पैमाना यह है कि खुद को प्रभावित करने वाले फैसलों में इन देशों को किस हद तक स्वतंत्र और बराबर की भागीदारी मिलती है ?'' पृ. 27 पर मुन्नी का सवाल है, ''मैंने तो सुना है कि लोकतंत्र एक ऐसी व्यवस्था है जहां लोक पर तंत्र हावी रहता है। इसके बारे में आपकी क्या राय है ?'' पृ. 32 पर जिंबाब्बे की स्वतंत्रता के बारे में है कि जिंबाब्वे ने 1980 में अल्पसंख्यक गोरों के शासन से मुक्ति पाई। रॉबर्ट मुगाबे आजादी के आन्दोलन की अगुवाई कर रहे थे और उसके बाद राष्ट्रपति बने। बाद के चुनावों में उन्होंने गलत तरीके अपनाए और संविधान संशोधन करके राष्ट्रपति के अधिकारों में वृद्धि की।... लोकप्रिय नेता भी अलोकतांत्रिक हो सकते हैं। लोकप्रिय नेता भी तानाशाह हो सकते हैं । अगर हम लोकतंत्र को परखना चाहते हैं तो चुनावों पर नजर डालना जरूरी है। ...'' मुन्नी फिर इस पर टिप्पणी करती है, ''जिंबाब्वे की बात क्यों करें ? मैं तो अपने देश में भी इस तरह की घटनाओं की खबर अखबारों में पढ़ती रहती हूं। हम इसकी चर्चा क्यों नहीं करते ?'' ''मेरे गांव में ग्राम सभा की बैठक कभी नहीं होती। यह कैसा लोकतंत्र है ?'' यह मुन्नी का एक और सवाल है। इस पुस्तक में से इस तरह के अनेक उद्धरण निकाले जा सकते हैं जहां कि बच्चे के सामने अपने परिवेश पर नजर डालने और विश्लेषण करने के अनेक अवसर हैं।

कक्षा11 की पुस्तक भी कम नहीं है। इसमें से कुछ उद्धरण देखिए - अध्याय दो - ''भारतीय संविधान में अधिकार' में दो घटनाओं का वर्णन है। पहली घटना है, 1982 के एशियाई खेलों के लिए ओवर ब्रिज बनाने और सड़कें आदि बनाने के लिए भारी संख्या में गांवों से गरीब लोगों - मजदूर और मिस्त्रियों को बुलाया गया। उन्हें भुगतान न्यूनतम मजदूरी से भी कम किया गया। समाज वैज्ञानिकों की एक टीम ने अध्ययन के बाद सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की। न्ययायालय ने इस दलील को स्वीकार किया और निर्णय दिया कि मजदूरों को तय मजदूरी दी जाए। दूसरी घटना है, मचल लालुंग को 23 वर्ष की उम्र में कैद किया गया। उस पर आरोप था कि उसने किसी को गंभीर चोट पहुंचाई है। मुकदमे के दौरान उसे मानसिक रूप से काफी अस्वस्थ पाया गया। उसका इलाज हुआ और डॉक्टरों ने जेल अधिकारियों को बताया कि अब मचल लालुंग स्वस्थ है और मुकदमा चलाया जा सकता है। लेकिन किसी ने ध्यान नहीं दिया। जब उसे 2005 में छोड़ा गया तो वह 77 वर्ष का था। इस दौरान उसके मुकदमे की एक बार भी सुनवाई नहीं हुई। इन घटनाओं पर सवाल है - ''यदि मचल लालुंग धनी और ताकतवर होता तब क्या होता ?'' और साथ ही पाठ छः में मचल लालुंग के मामले को पुनः उठाते हुए कहा गया है कि, ''इंसाफ में देरी करना इंसाफ से इंकार करना है। किसी न किसी को इस सिलसिले में कुछ न कुछ करना चाहिए।'' पहली घटना पर सवाल है कि - ''यदि निर्माण करने वाले ठेकेदार के साथ काम करने वाले लोग इंजीनियर होते तो क्या होता ? क्या उनके साथ भी अधिकारों का हनन इसी तरह होता ?'' 'न्यायपालिका' नाम अध्याय में देखिए इस उन्नी का दुस्साहस- ''मेरा तो सिर चकरा रहा है और कुछ समझ नहीं आ रहा है। लोकतंत्र में आप प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति तक की आलोचना कर सकते हैं, न्यायधीशों की क्यों नहीं ? और फिर, यह अदालत की अवमानना क्या बला है ? क्या मैं ये सवाल करूं तो मुझे 'अवमानना' का दोषी माना जाएगा ?'' इन पुस्तकों में ऐसे सवालों की भरमार है जो कि बच्चे को सोचने के लिए विवश करेंगे । कुछ अन्य सवाल - ''क्या कानून में परिवर्तन करके चुनावों में धन और बल के प्रयोग को रोका जा

सकता है ? क्या केवल कानून बदलने से कोई चीज वास्तव में बदलती है ?'' इन पुस्तकों में कार्टून्स का भरपूर इस्तेमाल है और कार्टून्स को सिर्फ टेक्सट की बोझिलता दूर करने के लिए इस्तेमाल नहीं किया गया है बल्कि ये व्यवस्था पर तीखे व्यंग्य करते हैं। ये कार्टून्स इरफान, शंकर और आर. के. लक्ष्मण के बनाए हुए हैं। पृष्ठ 71 पर आर. के. लक्ष्मण का कार्टून देखिए जिसमें एक नेताजी अपने साथी नेताओं से कह रहे हैं - ''सावधान ! चुनाव जीतना अब मुश्किल काम होने वाला है। अब नई आचार संहिता, सही और स्वच्छ मतदान तथा कड़े अनुशासन जैसी नई मुसीबतों को झेलना पडेगा।'' इसके नीचे सवाल है - ''नेताजी चुनाव आयोग से डर गए हैं, वे कह रहे हैं कि हमें 'निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव' की चुनौती झेलनी पड़ती है। नेता चुनाव आयोग से क्यों डरते हैं ? क्या यह स्थिति लोकतंत्र के लिए अच्छी है ?''

ऐसे में आप क्या करेंगे यदि आपको ही न्यायाधीश बना दिया जाए और पूछा जाए - ''नागरिकों का एक समूह जनहित याचिका के माध्यम से न्यायालय जाकर प्रार्थना करता है कि वह शहर की नगरपालिका के अधिकारियों को झुग्गी-झोंपड़ियां हटाने और शहर को सुंदर बनाने का काम करने के आदेश दे, ताकि शहर में पूंजी निवेश करने वालों को आकर्षित किया जा सके। उनका तर्क है कि ऐसा करना जनहित में है। झुग्गी-झोंपडी में रहने वालों का पक्ष है कि ऐसा करने पर उनके 'जीवन के अधिकार' का हनन होगा। उनका तर्क है कि जनहित के लिए साफ सुथरे शहर के अधिकार से ज्यादा जीवन का अधिकार महत्त्वपूर्ण है। कल्पना करें कि आप एक न्यायाधीश हैं । आप एक निर्णय लिखें फिर तय करें कि इस 'जनहित याचिका' में जनहित का मुद्दा है या नहीं ?'' अब आप स्वयं ही सोच सकते हैं कि ये पाठ्यपुस्तकें बच्चों में किस प्रकार की क्षमताओं का विकास करेंगी।

'टीचिंग ऑफ सोश्यल साइंसेज' के फोकस ग्रुप के पोजीशन पेपर में समाज विज्ञान के उद्देश्यों के बारे में कहा गया है कि 'शिक्षार्थी में समाज की आलोचनात्मक समझ को उनके स्वयं के जीवन अनुभवों से जोड़कर विकसित करना (हालांकि फोकस ग्रुप सदस्यों ने इसे बड़ी चुनौती माना है।) और सामाजिक विज्ञानों की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी है कि वे मानवीय मूल्यों जैसे - स्वतंत्रता, विश्वास, परस्पर सम्मान, विविधता के प्रति सम्मान आदि के लिए लोकप्रिय आधार को सृजित एवं व्यापक करें। अत: सामाजिक विज्ञानों का मुख्यत: यही उद्देश्य होना चाहिए कि वह बच्चे में स्वतंत्र रूप से सोचने और उन सामाजिक ताकतों से निपटने में सक्षम बनाएं जो कि इन मूल्यों को बाधित करती हैं।'

अभी तक इस लेख में चर्चा सामाजिक विज्ञान में भी राजनीतिक विज्ञान की ही हुई है। हालांकि पाठ्यपुस्तकों पर बहस की शुरूआत हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों से हुई है। संसद और मीडिया के माध्यम से उठी यह बहस बहुत ही बचकानी लगती है। बहस उठाने वाले सामाजिक यथार्थ से आंख चुराने की कोशिश कर रहे हैं और बच्चों के बारे में भी भौंथरी समझ का परिचय दे रहे हैं । बच्चे उतने बच्चे नहीं होते कि वे यथार्थ को न समझते हों। किसी भी प्रकार के आदर्श सामाजिक यथार्थ की गहरी समझ के बिना अर्जित नहीं किए जा सकते। बच्चों को यथार्थ से अलग रखकर आदर्श का पाठ पढ़ाना बेमानी है। दिन रात उनकी आंखों के सामने इस दुनिया का यथार्थ आता है। आप कैसे बचाएंगे उन्हें इस यथार्थ से । पाठ्यपुस्तकों को भले ही बचा लिया जाए लेकिन बच्चों की चेतना पर तो उसके प्रभाव रहेंगे ही। यदि साहित्य समाज का आईना है तो आप इस आइने से कैसे बचेंगे ? एक थोड़ा कटु सवाल प्रश्न उठाने वालों की पात्रता का है। क्या अब हमारे सांसद साहित्यकारों को भाषा के बर्ताव और यथार्थ को देखने का नजरिया सिखाएंगे ?

अन्त में, इन पाठ्यपुस्तकों को देखकर यही कहा जा सकता है कि कम से कम ये पुस्तकें मतारोपण, सामाजीकरण के नाम पर अनुकूलन एवं शिक्षा के राजनैतिक एजेण्डा को आगे बढ़ाने का काम तो नहीं ही करेंगी। और यह पाठ्यपुस्तकों के इतिहास में पहली ही बार हुआ है कि पाठ्यपुस्तकों को बच्चों के नजरिए, शिक्षा के उद्देश्यों एवं हमारी समाज की भावी कल्पना को रूप देने के नजरिए से गढ़ा गया है। मैं यह निश्चित तौर पर कह सकता हूं कि ये पाठ्यपुस्तकें उन मित्रों, जिन्होंने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 के आने पर कहा था कि, ''अरे ! यह बहस तो बहुत पहले से चल रही है। कोठारी कमीशन में क्या कम लिखा है। हम 40 वर्षों में उसके लक्ष्यों को ही कहां तक अर्जित कर पाए हैं'', के निराशा के कुहासे को तोड़ने और आशा का संचार करने में मदद करेंगी। ये पाठ्यपुस्तकों की एक नई संस्कृति का आगाज है। इन पाठ्यपुस्तकों में बच्चों के लिए सोचने और अपने जीवन्त यथार्थ से जुड़ने के भरपूर अवसर हैं और बच्चों ही नहीं बल्कि वयस्कों को भी ये पुस्तकें साहित्य जैसा आनंद देंगी। ◆